PARIPEX - INDIAN JOURNAL OF RESEARCH | Volume-8 | Issue-8 | August-2019 | PRINT ISSN No. 2250 - 1991

ORIGINAL RESEARCH PAPER | History

जैन परम्परा में लेश्या एक विश्लेषण

KEY WORDS:

Rakhi Jain Reserch Scolar Bundelkhand Univercity Jhansi

मानव की प्रकृति छः प्रकार से होती है उसे लेश्या के रूप मे वर्णित किया गया है जैसे (1) कृष्ण ले या, (2) नील ले या, (3) कापोत ले या, (4) पद्म ले या, (5) तेजो ले या, (6) भुक्ल ले या ।[1]

जैन धर्म का वैज्ञानिक तथ्य–पूर्ण गाणितिक आचार एवं अहिंसा पूर्ण धर्म है। जैन चिन्तकों ने अहिंसात्मक सदाचार को जितना महत्वपूर्ण स्थान दिया है उतना स्थान निम्न विचार को नहीं दिया है। आचार एवं विचार दोनो परस्पर अनुपूरक–परिपृरक है। दोनों परस्पर आश्रित भी है। विचार से अनुप्रेरित आचार होता है एवं आचार से अनुप्रेरित विचार होता है। हिंसात्मक विशुद्ध विचार से अहिंसात्मक आचार अनुप्रेरित होता है। जैन धर्म में सूक्ष्म सार्वभौमिक, सार्वकालिक भुद्ध अहिंसा को प्राधनता देने के कारण किन–किन भावों से हिंसा होती है एवं किन किन भावों से अहिंसा होती है उसका श्री सूक्ष्म विशुद्ध वर्णन जैन धर्म में पाया जाता है। भावनाओं के अनुसार कर्म बन्ध भी होता है। जिससे जीव को सुख एवं दुःख अनुभव करना पड़ता है। इतनी ही नहीं "भावना भवनाशनि भावना भववर्द्धनि" है। अर्थात् भावना से ही संसार की वृद्धि होती है। भावना को परिणाम, विचारधारा, चिन्तन, चिन्ता कहते है। भावना का विकास ही मनोविज्ञान है। मनोविज्ञान को जैन धर्मानुसार लेश्याविज्ञान भी कह सकते है। लेश्याओं के माध्यम से जैनाचार्यो ने मनोविज्ञान के सूक्ष्म व्यापक एवं वैज्ञानिक वर्णन किये है।

भाव लेश्या का लक्षण तथा कार्य –
लिंपइ अप्पीकीरई एदीए णियअप्पुण्णपुण्णं च।
जीयोत्ति होदि लेस्सा लेसागुणजागणयक्खादा।।[2]

लेश्या द्रव्य और भाव के भेद से दो प्रकार की है। उनमें से भाव लेश्या का लक्षण कहने के लिये वह सूत्र है। लिप्पति अर्थात इसके द्वारा जीव अपने पुण्यपाप को अपनाता है। लेश्या का वह लक्षण लेश्या के गुणो के ज्ञाता गणधर देव आदि ने कहा है। जिनके द्वारा जीव आत्मा को कर्मो से लिप्त करता है वह लेश्या है। कशाय के उदय से अनुरंजित मन–वचन–काय की प्रवृति लेश्या है। अथवा कशायो के उदय से अनुरंजित अर्थात् किसी भी अतिशयान्तर को प्राप्त योग प्रवृत्ति लेश्या है।

जोगपउत्ती लेस्सा कायउदयाणुरंजिया होइ।
तत्तो दोण्णं कज्जं बंध चउक्कं समुदिद्ठ।।[3]

काय वचन और मन की प्रवृत्ति लेश्या है। यह मन, वचन, काय की प्रवृत्ति कशाय के उदय से अनुरंजित है। इस कारण से दोनों योग और कशायों का कार्य प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेश रूप चार बन्ध ले या के ही कार्य परमागम मे कहे है। योग से प्रकृतिबन्ध, प्रदेशबन्ध और कशाय के उदय से स्थितिबन्ध, अनुभाग बन्ध होते है, इसलिए कशाय के उदय से अनुरंजित योग प्रवृत्ति जिसका लक्षण है उस लेश्या से चार प्रकार का बन्ध कहना युक्तियुक्त ही हैं।

साधारणतः देखा जाता है एवं अनुभव मे आता है कि कदाचित कथंचित अनेक भाव रूपी विचारधारा अप्रत्याशित भाव मे मन से फूट निकलती है। इच्छा एवं पुरूषार्थ पूर्वक उसी प्रकार भावना की आकांक्षा नहीं करते हुये भी वे भावधाराएँ कहाँ से एवं क्यों निकलती है।? इस प्रकार प्रश्न होना स्वभाविक है। अनेक मनुष्य अप्रत्याशित दूषित भावना से इतने संत्रस्त रहते हैं कि उनका जीवन रसविहीन हो जाता है। इसका कारण जैन तत्वविद् (तत्वो को जानने वाले मनोवैज्ञानिक) बताते है कि भूतपूर्व काल मे या पूर्वभव में संचित कर्मरूपी संस्कार है। आचार्य सिद्धान्त चक्रवर्ती नेमिचन्द्र ने गोम्मटसार जीवकाण्ड में बताया है कि –

भावादो छल्लेस्सा ओदयिया होंति।
भावेन षडपि लेश्याः औदयिका।।[4]

भाव से छहों लेश्या औदायिक हो होती हैं क्योंकि कशाय के उदय से संयुक्त योग की प्रवृत्ति ही लेश्या का लक्षण है।

वण्णोदयसंपादिद सरीरवण्णो दु दव्वदो लेस्सा।
मोहुदयखओवसमोवसमरखयज जीवफदंणं भावो।।[5]

वर्णनाम कर्म के उदय से उत्पन्न हुआ भारीर का वर्ण द्रव्य लेश्या है। असंयत पर्यन्त चार गुणस्थानों में मोह के उदय से, देशविरत आदि तीन गुणस्थानों मे मोहनीय के क्षयोपशम से उपशम श्रेणी के चार गुणस्थानो में मोनीय के उपशम से, क्षपक श्रेणी के चार गुणस्थानों में मोहनीय के क्षय से जो संस्कार उत्पन्न होता है जिसे जीव का स्पन्दन कहते है वह भाव लेश्या है। अर्थात जीव के परिणामों और प्रदेशों का चंचल होना भावलेश्या है। परिणामों का चंचल होना कषाय है और प्रदेशो का चंचल होना योग है। इसी से योग और कशाय से भाव लेश्या कही है।

लेश्या भाब्द वर्ण या रंग का जिससे लेप दिया जाता है, द्योतक है। ले या जैन सिद्धान्त के अनुसार दो प्रकार की है। 1. द्रव्य लेश्या 2. भाव लेश्या। वर्ण नाम कर्म के उदय से विभिन्न जीव के भारीर का रंग विभिन्न होता है। जैसे –नीग्रो लोग, नारकी लोगों के भारीर का वर्ण कृष्ण होता है। यूरोपियन लोगो के भारीर का वर्ण भवेत होता है। अनेक वृक्षो का भारीर हरित होता है। इसका कारण वर्ण नाम कर्म का उदय है। इसको ही वर्ण नामकर्म से संपादित द्रव्य लेश्या कहते है।[6]

जिस प्रकार विभिन्न जीवों के भारीर के रंग विभिन्न होते है उसी प्रकार विभिन्न जीवों के भाव रूपी भारीर का रंग विभिन्न होता है। इस भावात्मक रंग या परिणाम को भाव लेश्या कहते हैं। संदर्भ प्राप्त मनोविज्ञान में भावलेश्या को ही ग्रहण करना चाहिए।

देखा जाता है कि कुछ जीव स्वभावतः सरल कुछ क्रूर, कुछ लोभी, कुछ उदार, कुछ साहसी, कुछ मेधाबी, कुछ जड़ वृद्धि होते हैं। एक ही परिवार के एक ही माता–पिता से जन्म लेने वाली, एक समान परिसर एवं साधनों से जीवन यापन करने वाली संतान में से एक प्रतिभाशाली बन जाती है और दूसरी संतान प्रतिभाहीन बन जाती है। एक संतान श्रीहीन (धनहीन) होते हुये भी धीमान बन जाती है तो अन्वेक धीमान होते हुये भी श्रीहीन हो जाती है। एक का मानसिक झुकाव कला के प्रति तो एक का विज्ञान के प्रति होता है। एक की बुद्धि विज्ञान में तीव्र गति से संचार करती है। एक की बुद्धि खेलकूद में लगती है तो दूसरे की तत्वचिंतन में लीन हो जाती है। एक आदमी की भावना धर्म की ओर स्वतः झुकती है तो दूसरे की भावना भोग की ओर दौड़ती है। इस प्रकार विभिन्न विचित्र पूर्ण मनोभाव से ज्ञात होता है कि इसके पीछे कुछ प्रेरणा होनी चाहिए। वह प्रेरणा पूर्ण जन्म में संस्कार का ही रूपान्तर है इसीलिये आचार्यो ने बताया है कि लेश्या (परिणाम भाव) पूर्वोपार्जित कर्म से बनती है। इसीलिए लेश्या औदायिक (उदयगत) भाव है।

भाव (लेश्या) के सामान्य भेद –
किण्हा णीला काऊ तेऊ पम्पा य सुक्क लेस्सा य।
लेस्साणं णिद्देसा छच्चेव हवंति णियमेण।।[7]

कृश्ण लेश्या, नील लेश्या, कापोत लेश्या, पद्म लेश्या, तेजो लेश्या, भुक्ल लेश्या ये छह ही लेश्याओं के नाम नियमित हैं। यहाँ एवकार (ही) से ही नियम का ज्ञान हो जाने से पुनः नियम भाब्द का ग्रहण निरर्थक ही है। अतः वह नैगमनय से लेश्या छह हैं और पर्यायार्थिक नव से असंख्यात लोक है, यह आचार्य के अभिप्राय को सूचित करता है।

लेश्या सामान्यतः एक होते हुये भी विशेष छः प्रकार होती है। और भी सूक्ष्म विवेचन करने पर सहस्र, दस सहस्र, करोड़, 10 करोड़, संख्यात, असंख्यात, के होते है। सूक्ष्म दृश्टि से विचार करने पर संख्यात, असंख्यात भेद हो जाते है –

उदाहरण स्वरूप – सफेद वर्ण को लीजिये। दूध, रूई, कपास, कागज, अस्थि, चाँदी आदि सफेद होते हुये भी सफेद में कुछ अंतर भेद अनेक लक्षित होते हैं। जैसे एक अस्वस्त्र (पीपल) वृक्ष के लक्षावधि पत्र होते हैं उनके सामान्यत पत्र अण्डाकार वृत्त आकार सहित लंबा नुकीला अंश होते हुए भी अनेक पत्र में सूक्ष्म अंतर है। एक पत्र दूसरे पत्र के समान नहीं होता है, इसी प्रकार एक कृष्ण लेश्याधारी जीव के परिणाम में दूसरे कृष्ण लेश्याधारी जीव के परिणाम से वैमनस्यता रहती है।

भावों (लेश्याओं) का परिणाम –
लेगाणमसंखेज्जा उदधट्ठा कसायगा होंति।।
तत्थ किलिट्ठा असुहा विसुद्वा तदालावा।।[8]

कशायों के अनुभाग रूप उदय स्थान असंख्यात लोक मात्र होते हैं। उनमे यथा योग्य असंख्यात लोक से भाग देने पर बहुभाग प्रमाण संक्लेश स्थान हैं, वे भी असंख्यात लोक प्रमाण ही हैं, और भोश एक भाग प्रमाण विशुद्धि स्थान हैं, वे भी असंख्यात लोक मात्र हैं। संक्लेश स्थान तो अशुभ लेश्याओं के स्थान है और विशुद्धि स्थान भुद्ध लेश्याओं के स्थान है।

संसार में उत्तम वस्तु स्वभायतः कम होती है एवं निकृश्ट वस्तु प्रचुर मात्रा में उलब्ध होती है। जैसे रत्न, सोना आदि कम मात्रा में पाये जाते हैं किन्तु मिट्टी, पत्थर अधिक मात्रा में उपलब्ध होते हैं। इसी प्रकार पवित्र, विशुद्ध, उदार मनोभाव कम मात्रा में पाया जाता है एवं कुत्सित, अपवित्र, मनोवल प्रचुर मात्रा मे पाया जाता है। कशायों के

अनुभाग रूप उदय स्थान असंख्यात लोक मात्र होने के कारण लेश्याओं का स्थान भी असंख्यात लोक मात्र होता है। असंख्यात लोक अर्थात् एक लोक में प्रदेश असख्यात होते है। इसी प्रकार असंख्यात लोक मे जितने प्रदेश है उतने को असंख्यात लोक कहते है। यदि सामान्य गणित में कहा जाए तो असंख्या गुणा असंख्यात बराबर असंख्यात होता है। असंख्यात लोक प्रमाण संख्या को 1000 एवं यथायोग्य असंख्यात लोक को 10 मानने पर संक्लेश एवं विशुद्ध स्थान निम्न प्रकार आयेगा –

सम्पूर्ण लेश्या स्थान बराबर असंख्यात लोक बराबर 1000
यथायोग्य असंखत लोक = 10
संक्लेश स्थान = सर्वस्थान–एक भाग
विशुद्धि स्थान = 1 भाग

संक्लेश सीन = असंख्यात लोक / यथायोग्य असंख्यात लोक = 1000 / 10 =1000 एक भाग

बहुभाग = 1000.1000=900
विशुद्धि स्थान = 1 भाग = 100

उपरोक्त गणित से सिद्ध होता है कि विशुद्ध परिणाम अत्यन्त कम होने के कारण दुर्लभ एवं मूल्यवान है। संक्लेश परिणाम प्रचुर एवं सुलभ के साथ–साथ मूल्यहीन भी है, वह अनुभव गम्य है। परन्तु विशुद्ध विचार धारा पुरूशार्थ करने पर भी मन मे अति कठिनता से संचार करती है। संसार में मलिन विचारधाराओं के जीव यत्र–तत्र प्रचुर मात्रा मे पाये जाते हैं किन्तु विशुद्ध विचार धारा वाले जीव विरल मात्रा में पाये जाते है।

तिव्वतमा तिव्वतरा तिव्वा असुहा सुहा सदा मंदा।
मंदतरा मंदतमा छट्ठाणगया पत्तेयं।।[9]

पहले कहे असंख्यात लोक के बहुभाग मात्र अशुभ लेश्या सम्बन्धी स्थान कृश्ण, नील, कापोत के भेद से 3 प्रकार के हैं। उन सामान्य अशुभ लेश्या सम्बन्धी स्थानों में यथायोग्य असंख्यात लोक में भाग देने पर बहुभाग प्रमाण कृष्ण लेश्या सम्बन्धी तीव्रतम कशायरूप संक्लेश स्थान है। शेश रहे एक भाग में पुनः असंख्यात लोक मसे भाग देने पर बहुभाग मात्रा नील लेश्या सम्बन्धी तीव्रतर संक्लेश स्थान है। शेश रहे एक प्रमाण कापोत लेश्या सम्बन्धी तीव्र संक्लेश स्थान है। पहले कशायो के उदय स्थानो में असंख्यात लोक से भाग देकर जो एक भाग प्रमाण भ्राुभ लेश्या सम्बन्धी स्थान कहे थे वे तेज, पद्म और भ्राुक्ल के भेद से 3 प्रकार के हैं। उनमे असंख्यात लोक से भाग देकर बहुभाग प्रमाण ते जोलेश्या सम्बन्धी मदं संक्लेश स्थान हैं। शेश बचे एक भाग में पुनः असंख्यात लोक से भाग देकर बहुभाग प्रमाण पद्म लेश्या सम्बन्धी मन्दतम संक्लेश स्थान है। इन कृष्ण लेश्या आदि सम्बन्धी 6 स्थानों मे से प्रत्येक में अशुभ में तो उत्कृष्ट से जघन्य पर्यन्त और भ्राुभ लेश्याओं में से जघन्य से उत्कृश्ट पर्यन्त असंख्यात लोक मात्र षटस्थान पतित हानि – वृद्धि स्थान नियम से होते है।

परिणाम में परिणमन –
असुहाणं वरमज्झिम अंवरसे किण्हणीलकाउतिए।
परिणमदि कमेणप्पा परिहाणीदो किलेसस्स।।[10]

यदि जीव के संक्लेश परिणामों में हानि होती है तो वह अशुभ, कृष्ण, नील और कापोत लेश्याओ के उत्कृश्ट, मध्यम और जघन्य अंशो में क्रम से परिणमन करता है अर्थात् उस लेश्या के उत्कृश्ट अंश से मध्यम मे और मध्यम से जघन्य रूप परिणमन करता है।

काऊ णीलं किण्हं परिणमदि किलेसवड्ढिदो अप्पा।
एवं किलेसहाणीवड्ढीदो होदि असुहत्तियं।।[11]

तथा संक्लेश परिणामों में वृद्धि होने से कापोत, नील और कृष्ण लेश्या रूप से परिणमन करता है। इस प्रकार संक्लेश परिणामों में हानि, वृद्धि होने से तीन अशुभ लेश्या रूप से परिणयन करता है।

तेऊ पम्मे सुक्के सुहाणमवरादि असंगे आधा।
सुद्धिस्स व बड्ढीदो हाणीदो अण्णहा होदि।।[12]

भ्राुभ तेज, पद्म और भ्राुक्ल लेश्याओं के जघन्य, मध्यम, उत्कृश्ट अंशो मे आत्मा विशुद्धि की वृद्धि से परिणमन करता है और विशुद्धि की हानि से अन्यथा अर्थात् भ्राुक्ल लेश्या के उत्कृश्ट अंश में तेजोलेश्या के जघन्य अंश तक परिणमन करता है।

केवल ज्ञान के अनन्तर भाव में चंचलता के अभाव में किसी प्रकार भी परिणमन नहीं होता है। उस समय मे अपरिणत दशा प्रकट होती है। उसके नीचे भूमिका में भाव की अशुद्धता एवं चंचलता के कारण प्रति समय हीयमान एवं बर्द्धमान रूप से परिवतर्ति होता रहता है।[13]

जब भाव विशुद्धि के कारण संक्लेश (दूषित भाव) मे हानि होती है, उत्कृश्ट संक्लेश ह्रास होकर मध्यम एवं जघन्य रूप से परिणमन करता है। यदि दूशित भाव में वृद्धि होती है तब वह भाव दूशित भाव में वृद्धि होती है, तब वह भाव दूशित से दूशिततर एवं दूशिततम रूप परिणमन करता है। इसी प्रकार परिशुद्ध भावना में वृद्धि होती है तो भ्राुद्धि, भ्राुद्धातर एवं भ्राुद्धतम रूप परिणमन करती है।

जैसे अपने भात्रु को देखकर एवं उसकी भात्रुता को विचार में लाकर उसकी प्रतिशोध की भावना जब मन मे जागृत होती है, तब संक्लेश भाव उत्तरोत्तर बढ़ता ही जाता है। उसी प्रकार जब मित्रों की भेंट होती है एवं उनकी मित्रता स्मरण में लाकर उनके प्रति उपकार की भावना जाग्रत होती है। माता जब प्रिय पुत्र को देखती है, तब उसका मातृत्व भाव उत्तरोत्तर बढ़ता है जिससे अग्निच्छा पूर्वक भी स्तन से दूध निकल जाता है।

परिणामों में परिवर्तन – भाव में जब परिवर्तन होता है तब वह भाव परिवतर्ति होते होते भावान्तर रूप परिणमन कर लेता है। जिस समय में स्वभाव के जघन्य से लेकर उत्कृश्ट स्थान तक परिवर्तन होता है वह परिवर्तन स्वस्थान संक्रमण है। जब भावान्तर रूप परिणमन करता है तब उसको परस्थान संक्रमण कहते हैं। जैसे एक स्थानीय संख्या एक से लेकर वृद्धि होते होते 9 तक वृद्धि होती है तब एकक स्थानीय संख्या एक से लेकर वृद्धि होते –होते 9 तक वृद्धि होती है तब एक स्थानीय होने से स्वस्थान संक्रमण है जब एक वृद्धि होते होते एक स्थानीय नौ को अतिक्रमण करके दस आदि स्थानीय आदि रूप परिक्रमण करता है, तब परधान संक्रमण होता है। जैसे छोटा आम (केरी) का अधिक खट्टा रस रहता है। जैसे–जैसे आम बड़ा होता जाता है, खट्टा रस कम होता जाता है। यह स्वस्थान संक्रमण है। इसी प्रकार विशुद्धि के कारण जब कृष्ण लेश्या रूप संक्लेश भाव मन्द होते होते कपोत लेश्या रूप होंगे तो यह स्वस्थान संक्रमण होता। जब आम पकना प्रारम्भ होता है तब खट्टा रस परिवर्तित होकर मीठा रस रूप परिणमन करता है, परिवर्तित होते–होते जब पूर्ण मीठा रस रूप परिवर्तित हो जाता है, तब तक परस्थान संक्रमण होता है।

संकमणं सट्ठाणपरट्ठाणं होदित्ति किण्हसुक्काणं।
वड्ढीसु हि सट्ठाणं उभयं हाणिम्मि सेसउभयेवि।।[14]

संक्रमण के दो प्रकार होते हैं – स्वस्थान संक्रमण और परस्थान संक्रमण उनमें से कृष्ण लेश्या और शुक्ल लेश्या का वृद्धि में नियम से स्वस्थान संक्रमण ही होता है। हानि में स्वस्थान और परस्थान दोनों होते है। शेश नील, कापोत, तेज पद्म लेश्याओं में हानि और वृद्धि में दोनो संक्रमण होते है।

एक स्थान से दूसरे स्थान में जाने को संक्रमण कहते हैं। यदि वह उसी लेश्या में होता है तो स्वस्थान संक्रमण है और यदि एक लेश्या से दूसरी में होता है तो परस्थान संक्रमण है। वृद्धि में कृष्ण और भ्राुक्ल लेश्या में स्वस्थान संक्रमण ही होता है क्योकि संक्लेश की वृद्धि कृष्ण लेश्या के उत्कृश्ट अंश पर्यन्त ही होती है। तथा विशुद्धि की वृद्धि भ्राुक्ल लेश्या के उत्कृश्ट अंक तक ही होती है। अतः जो जीव कष्ण लेश्या या भ्राुक्ल लेश्या में वर्तमान है वह संक्लेश या विशुद्धि की वृद्धि में उन्ही लेश्याओं के उत्कृश्ट अंश में जायेगा, किन्तु हानि मे दोनो संक्रमण हाते हैं क्योकि उत्कृश्ट कृष्ण लेश्या से संक्लेश की हानि होने पर, उसी लेश्या के उत्कृश्ट से मध्यम में और पध्यम से जघन्य अंश में आता है और जघन्य अंश से भी हानि होने पर नील लेश्या में चला जाता है। इसी तरह विशुद्धि की हानि होने पर भ्राुक्ल लेश्या के उत्कृश्ट अंश से मध्यम में और मध्यम से जघन्य अंश मे आता है तथा और भी हानि होने पर पद्य लेश्या में जाता है। इस तरह हानि मे दोनो संक्रमण होते है। भोष मध्य की चारो ही लेश्याओं में हानि वृद्धि दोनो में ही दोनो संक्रमण होते है।

अध्याय सन्दर्भ सूची

1. पंचस्तिकायसंग्रह गाथा 7 की तात्पर्यवृत्ति टीका
2. कार्तिकेयानुप्रेक्षा, गाथा 1
3. वारस अणुवेक्खा, गाथा 90
4. वही
5. पद्यनंदि पंचविंशतिका, उपासकसंस्कार अधिकार , छनद 42
6. ज्ञानार्णव, भावना अधिकार , छनद 112
7. छहढाला, पाँचवीं ढाल, छनद 1 व 2
8. वही
9. राजवार्तिक, अध्याय 9 सूत्र 36, वार्तिक 12
10. छहढाला, पाँचवीं ढाल, छनद 12
11. मोक्षमार्गप्रकाशक, पृश्ठ 229
12. मोक्षमार्गप्रकाशक, पृश्ठ 52
13. पंण्डित भूधरदासजी कृत बारह भावना
14. छहढाला, पाँचवीं ढाल, छनद 3